THE TIMES OF INDIA

Date:24-11-23

Story, Not History

NCERT must not include myths in history syllabi. Myths have helped us endure. History divides us

TOI Editorials

Schoolchildren might be made to study epics like the Ramayan and Mahabharat in their history class as part of India's 'classical past', if an NCERT panel has its way. But this blurring of myth and history can only be counterproductive. India's deep relationship with its mythology should not be reduced to the wrangles of history. What is history, after all, but the names and dates of empires and battles, endless rounds of violence and extraction? 'History is about as instructive as an abattoir,' said the Irish poet Seamus Heaney.

Many cultures, including ours, have a different understanding. Instead of historical facts, we are more at home in the timeless truths of myth. Most Indians may not recall historical events, but orient themselves in these stories, including the great wellspring of the epics. Many of us learn about life and ethics, we find refuge and community in them. This is not a backward looking endeavour, but an anchor in this world. The formal writing and studying of history is an impulse that originated in the West. They say that we must understand the past to critique it and learn from it. But is this constructive learning visible in their actions? A focus on the past seems to lead to grievance and score-settling, an impetus to more violence, rather than mature understanding.

Perhaps India's historical lack of interest in history is not a defect, but a difference that has worked to our great advantage. Our calm indifference, our ability to keep our eyes on a different horizon in myth has helped us to not be imprisoned by the past. These eternal stories have nourished our spirit, told and retold by bards, storytellers, plays and TV, proverbs and poems. Instead of keeping our minds on the cycles of power and vengeance, we have often succeeded in staying responsive to our own moment. Rather than a straight telling of absolute facts, we are comfortable with multiple perspectives, context and relative truths. It has helped us thrive as a diverse, accommodating nation. History can be weaponised with ease. When historical narratives are told with drama and flair, they can become seductive stories, making us project current animosities into long-ago events. They can have a galvanic effect on specific votebanks. We draw twisted morals from the past into our present situation, and turn on fellow citizens.

Unhappy is the land that needs a hero, the saying goes. Happy is the nation that is not obsessed with its history.

दैनिक भास्कर

Date:24-11-23

क्या दुबई बैठक से कोई ठोस परिणाम मिलेंगे

संपादकीय

पर्यावरण संकट पर आगामी 30 नवंबर से 12 दिसंबर तक 28वीं सीओपी (कांफ्रेंस ऑफ पार्टीज) दुबई में होगी। क्योटो प्रोटोकॉल और पेरिस एग्रीमेंट सहित पर्यावरण परिवर्तन के नए तथ्यों और उसके संकट को लेकर दुनिया के प्रमुख देश चर्चा करेंगे। वैसे इस दिशा में हुई अभी तक की कोशिशें बेनतीजा रहीं। गरीब देशों पर अपने यहां सुधार का दबाव है जबकि असली संकट बड़े देशों के कारण है, जिनसे अपेक्षा है कि वे गरीब देशों को आर्थिक मदद देंगे। यह सच है कि स्वच्छ ऊर्जा के लिए प्रारम्भिक पूंजी काफी ज्यादा लगती है, जिसमें विकासशील देश सक्षम नहीं हैं। रास्ता एक ही है- धनी देश आगे आकर उनकी मदद करें। कुछ संस्थाओं की संयुक्त रिपोर्ट के अनुसार एक प्रतिशत अरबपति साल भर में जितना कार्बन उत्सर्जन करते हैं, उतना दुनिया के बाकी 99% में से किसी भी एक को करने में 1500 साल लगेंगे। इस बीच यूएन की रिपोर्ट है कि इस वर्ष के 86 दिन तापमान वृद्धि 1.5 डिग्री को पार कर दो डिग्री पहुंच गई, जो अपने आप में रिकॉर्ड है। तमाम तथाकथित कोशिशों के बावजूद वर्ष 2022 में कार्बन उत्सर्जन 57.4 अरब टन यानी 1.2% ज्यादा रहा। कोरोना में गतिविधि कम होने से 4.7% कम हुआ था। लेकिन अब फिर यह आंकड़ा 2019 के रिकॉर्ड को पार कर चुका है। बहरहाल दुबई बैठक अहम होगी।

Date:24-11-23

हाईकमान संस्कृति हमारे लोकतंत्र के लिए खतरनाक

पवन के. वर्मा (लेखक, राजनयिक, पूर्व राज्यसभा सांसद)

लगता है हमने एक अस्वीकार्य विरोधाभास को खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया है। वो यह कि भारत दुनिया के उन कुछ लोकतंत्रों में से एक होगा, जहां मतदाता के पास तो चुनने की स्वतंत्रता है, लेकिन राजनीतिक दलों के सदस्यों के पास लगभग बिलकुल नहीं है। पार्टियों में अंदरूनी लोकतंत्र की कमी हमारी राजनीति की विशेषता बन गई है। यहां एक 'हाईकमान' संस्कृति प्रचलित है, जिसका आदेश अंतिम होता है, और उसके विपरीत किसी विचार का न केवल स्वागत नहीं किया जाता, बल्कि वह दंडनीय भी होता है। लोकतंत्र की एक साथ उपस्थिति और अनुपस्थिति दुनिया के इस सबसे बड़े लोकतंत्र की विरली ही विशेषता है।

लेकिन हमेशा से ऐसा नहीं था। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान, और उसके बाद भी, खुले संवाद की संस्कृति कांग्रेस के भीतर एक मानक की तरह मौजूद थी। महात्मा गांधी के विचार भले ही अधिकतर स्वीकार किए जाते हों, लेकिन वह कोई फरमान नहीं होता था, बल्कि उसके लिए वैध रूप से एक नैतिक दबाव बनाया जाता था। स्वतंत्रता के बाद भी, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और गृहमंत्री सरदार पटेल के बीच मतभेदों के बावजूद संवाद की गुंजाइश थी। यही स्थिति पार्टी फोरम और कैबिनेट दोनों में दूसरे वरिष्ठ नेताओं के बीच भी थी।

इंदिरा गांधी के उदय के बाद यह बदला। निर्बाध नेतृत्व और व्यक्ति-पूजा के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। उनकी नेतृत्व-क्षमता असंदिग्ध थी, लेकिन आज्ञाकारिता की अनुचित प्रवृत्ति को प्रश्रय देने से उस पर ग्रहण लग गया। अतीत के कांग्रेस नेता 'इंडिया इज़ इंदिरा, इंदिरा इज़ इंडिया' जैसे किसी नारे से नाराज या शर्मिंदा हो सकते थे या उसकी उपेक्षा कर सकते थे, लेकिन श्रीमती गांधी ने उसका स्वागत किया। 1959 में जब नेहरू से मीडिया ने पूछा कि क्या वे इंदिरा को अपनी उत्तराधिकारी के रूप में तैयार कर रहे हैं, तो उन्होंने कहा था कि वे राजनीतिक वंशवाद के विचार का मानसिक रूप से विरोध करते हैं। फिर भी, इंदिरा प्रधानमंत्री बनीं, और उनकी असामयिक हत्या के बाद उनके बेटे राजीव गांधी भी। राजीव के बाद उनकी पत्नी सोनिया गांधी कांग्रेस की सबसे लंबे समय तक पद पर रहने वाली अध्यक्ष बनीं। उनके पुत्र राहुल के हाथों में अब कमान है।

अब तो जैसे एक परिपाटी ही बन गई है। आज भारत भर में अलोकतांत्रिक रूप से संचालित होने वाले राजनीतिक घरानों ने एक कुरूप परम्परा कायम कर दी है। यह सच है कि अगर कोई राजनेता अपने माता-पिता के नक्शेकदम पर चलकर उनकी विरासत को आगे बढ़ाता है, तो इसमें कुछ गलत नहीं। लेकिन अलोकतांत्रिक यह है कि राजनीतिक घराने की संतान को स्वत: ही पार्टी के 'सिंहासन' का उत्तराधिकारी स्वीकार लिया जाता है!

अमेरिका या यूके के विपरीत भारत की पार्टियों में आंतरिक चुनाव ज्यादातर एक प्रहसन की तरह ही होते हैं। यह आज भाजपा में भी आ गया है, जबकि पहले ऐसा नहीं था। एक स्वस्थ कॉलेजियम के तहत शीर्ष पर अटल बिहारी वाजपेयी, एलके आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी और कई अन्य नेता निर्णय लेते थे। पार्टी में किसी एक का निर्विवाद अधिनायकवाद मजबूत नेतृत्व का भ्रम दे सकता है, लेकिन यह निश्चित रूप से अवांछनीय है। सबसे पहले तो यह नीति-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। जब करोड़ों लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णय चर्चा और बहस के बिना ले लिए जाते हैं तो वे अकसर मनमानीपूर्ण होते हैं। दूसरे, यह एक वास्तविक मेरिटोक्रेसी के विकास को खासी क्षति भी पहुंचाता है। क्योंकि तब हां में हां मिलाने वालों को उन पर तरजीह दी जाने लगती है, जो प्रतिभाशाली और विचारशील हों। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि तब नेता की क्षमताओं को असंदिग्ध और सम्पूर्ण मान लिया जाता है, उसे कोई चुनौती नहीं दी जा सकती है।

यह दरबारी संस्कृति को भी बढ़ावा देता है, जो लोकतंत्र के लिए अस्वास्थ्यकर है। इसका यह अर्थ होता है कि कोई व्यक्ति अपात्र होने के बावजूद केवल नेता के साथ अपनी निकटता के कारण सत्ता पर अनुचित दबदबा रखने लगता है। यह शक्ति-संतुलन को प्रभावित करता है और भविष्य के उन नेताओं या नेतृत्व के वैकल्पिक धड़ों के उदय को रोकता है, जो सुप्रीमो के लिए खतरा माने जाते हैं। चाटुकारिता के माहौल में नेता की जोरदार प्रशंसा की जाती है और बार-बार उसका नाम लेते हुए सभी चीजों के लिए उसे श्रेय दिया जाता है। वफादारी की परीक्षा में प्रतियोगियों से आगे निकलने के लिए दरबारियों में होड़ मची रहती है। भारत जैसी संवादप्रिय सभ्यता में लोकतंत्र के रक्षकों में ही व्याप्त यह अलोकतांत्रिकता गहरी चिंता का विषय है।

जनसत्ता

Date:24-11-23

फर्जी मुस्तैदी

संपादकीय

सूचना तकनीक के तीव्र प्रसार ने जहां एक तरफ बहुत सारी सुविधाएं प्रदान की हैं, वहीं कई चुनौतियां भी पेश की हैं। इस तकनीक का उपयोग बहुत सारे ऐसे लोग भी करने लगे हैं, जो समाज में अस्थिरता, नफरत, वैमनस्यता और उत्तेजना फैलाना या किसी को बदनाम कर सनसनी पैदा करना चाहते हैं। झूठी खबरों और सूचनाओं के चलते अनेक जगहों पर लोगों को उत्तेजित होकर भीड़ हिंसा करते भी देखा जा चुका है। ऐसी सूचनाओं पर लगाम कसने के लिए सरकार ने कड़े कानूनी उपाय किए हैं। मगर अब एक नई चुनौती के रूप में डीपफेक से फर्जी तस्वीरें बना कर इंटरनेट के सामाजिक मंचों पर साझा करने की प्रवृत्ति उभरी है। डीपफेक दरअसल कृत्रिम मेधा के जरिए किसी और के चेहरे पर किसी और का चेहरा चिपका कर नकली तस्वीर बनाने की विकसित कर ली गई एक तकनीक है। पिछले दिनों इस विधि से कुछ फिल्मी अभिनेत्रियों की भोंडी तस्वीरें बना कर सोशल मीडिया पर प्रसारित की गई थी, जिसे लेकर उन्होंने गंभीर आपत्ति दर्ज कराई थी। उस पर चर्चा चली तो प्रधानमंत्री ने कहा कि उनकी भी इसी तरह की गरबा करते एक तस्वीर फैलाई गई थी। डीपफेक की बढ़ती प्रवृत्ति पर उन्होंने चिंता जाहिर की थी।

अब केंद्रीय संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने इस तरह की तस्वीरें जारी किए जाने को लेकर गंभीरता दिखाई है। सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री ने सोशल मीडिया मंचों को संचालित करने वाली कंपनियों के साथ बैठक की और उन्हें ऐसी गतिविधियों की पहचान करने, उन पर रोक लगाने के उपाय तलाशने को कहा। मंत्री ने इसके लिए जल्द ही नए कानून बनाने की भी घोषणा की है। दरअसल, डीपफेक ही नहीं, पूरी कृत्रिम मेधा को लेकर रचनात्मक काम करने वालों में गहरी चिंता और क्षोभ देखा जा रहा है। इससे बौद्धिक संपदा में खुली सेंधमारी होने, फर्जी सूचनाओं, तस्वीरों और रचनात्मक, संवेदनशील विधाओं में भोंडी नकल की अराजकता पसरने का खतरा महसूस किया जाने लगा है। बहुत सारे लोग इसका रोजगार पर भी बुरा असर भांप रहे हैं। हालांकि कृत्रिम मेधा के चलन को पूरी तरह रोकने की हिमायत नहीं की जा सकती, क्योंकि विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में बदलती जरूरतों के मद्देनजर इसकी उपयोगिता असंदिग्ध कही जा सकती है। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में इससे नई क्रांति की उम्मीद की जा रही है। मगर रचनात्मक कामों में इसका दुरुपयोग बड़े पैमाने पर शुरू हो चुका है। एक फर्जी और नकली रचनात्मक संसार पसरने लगा है। इसका सबसे अधिक दुरुपयोग समाज में विकृति पैदा करने वाले कर रहे हैं। इसलिए इस पर तत्काल लगाम लगाना वक्त की जरूरत है।

किसी भी तकनीक का विकास इस मंशा से नहीं किया जाता कि समाज और मानव जीवन को विकृत किया जा सके, विद्रूप रचा जा सके। मगर कुत्सित और उपद्रवी मानसिकता के लोग उनका दुरुपयोग कर ऐसा माहौल बनाने का प्रयास करते ही हैं। कानून के भय से ही उन पर अंकुश लगाया जा सकता है। जब कृत्रिम मेधा को लेकर इतने बड़े पैमाने पर आशंकाएं जताई जा रही हैं और उसके दुरुपयोग के शुरुआती प्रभाव समाज पर दिखने शुरू हो गए हैं, तो निस्संदेह सरकार से इसके लिए एक प्रभावी नियामक तंत्र विकसित करने और कंपनियों को जवाबदेह बनाने की अपेक्षा की जाती

है। अच्छी बात है कि सरकार ने इस दिशा में कदम बढ़ा दिए हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि जल्दी ही इसे लेकर समग्र रूप से व्यावहारिक कानून आएंगे, जिससे हर तरह की आशंका का शमन संभव हो सकेगा।

Date:24-11-23

कैसे हो ठोस कचरा प्रबंधन

रजनीश कपूर

दिल्ली में बढ़ते वायु प्रदूषण की समस्या को हम सालों से सुनते आ रहे हैं। एक से एक सनसनीखेज वैज्ञानिक रिपोर्टों की बातों को हमें भूलना नहीं चाहिए। यह भी नहीं कि दिल्ली से निकलने वाले गंदे कचरे, कूड़ा-करकट को ठिकाने लगाने का पुख्ता इंतजाम अभी तक नहीं हो पाया है। सरकार यही सोचने में लगी है कि कूड़ा कहां फिंकवाया जाए या इसका निस्तार यानी ठोस कचरा प्रबंधन कैसे किया जाए? जाहिर है इस गुत्थी को सुलझाए बगैर जलाए जाने लायक कूड़े को चोरी- छुपे जलाने के अलावा और क्या चारा बचता होगा? इस गैर- कानूनी हरकत से उपजे धुएं और जहरीली गैसों की मात्रा कितनी है, जिसका कोई हिसाब किसी भी स्तर पर नहीं लगाया जा रहा। इन सबके चलते आम नागरिकों पर सरकार द्वारा लगाए जा रहे प्रतिबंधों से असुविधा हो रही है परंतु सरकार की प्रदूषण नियंत्रक एजेंसियां असल कारण तक नहीं पहुंच पा रहीं।

जब कोई अपने सपनों का वाहन खरीदता है तो उसे उसकी कीमत के साथ-साथ रोड टैक्स, जीएसटी आदि टैक्स भी देने पड़ते हैं। इन टैक्सों का मतलब है कि यह सब राशि सरकार की जेब में जाएगी और घूम कर जनता के विकास के लिए इस्तेमाल की जाएगी परंतु रोड टैक्स के नाम पर ली जाने वाली मोटी रकम क्या वास्तव में जनता पर खर्च होती है? क्या हमें अपनी महंगी गाड़ियां चलाने के लिए साफ-सुथरी सड़कें मिलती हैं? क्या टूटी-फूटी सड़कों की समय से मरम्मत होती है? क्या सड़कों की मरम्मत करने वाली एजेंसियां अपना काम निष्ठा से करती हैं? इनमें से अधिकतर सवालों के जवाब आपको नहीं में मिलेंगे। सवाल यह भी उठता है कि सरकार द्वारा वाहनों प्रदषण के स्तर को नियंत्रित रखने की दृष्टि से कई नियम लागू किए गए हैं। इनमें अहम है कि दस साल पुराने डीजल और पंद्रह वर्ष से अधिक पुराने पेट्रोल वाहन को सड़कों पर चलने की अनुमति न देना। इसके साथ ही जिन वाहनों को चलने की अनुमति है, उन सभी में प्रदूषण नियंत्रण प्रमाणपत्र यानी 'पीयूसी' होना अनिवार्य है।

पिछले वर्ष नवम्बर में दिल्ली सरकार ने एक आदेश के तहत वैध प्रदूषण प्रमाणपत्र के बिना चलने वाले वाहनों पर 10,000 रुपये का मोटा जुर्माना लगाने के आदेश दिए थे। दिल्ली की सड़कों पर परिवहन विभाग और ट्रैफिक पुलिस इसे सख्ती से लागू करते हुए नजर भी आए। हर साल दिवाली के आसपास दिल्ली एनसीआर पर एक जहरीली हवा की चादर चढ़ जाती है। पर्यावरण विशेषज्ञ, नेता और संबंधित सरकारी विभाग हर साल की तरह इस साल भी इस समस्या को लेकर सिर खपा रहे हैं। उन्होंने अब तक के अपने सोच-विचार का नतीजा यह बताया है कि खेतों में फसल कटने के बाद

जो ठूंठ बचते हैं, उन्हें खेत में जलाए जाने के कारण ये धुआं बना है जो एनसीआर के ऊपर छा गया है। लेकिन सवाल उठता है कि यह तो हर साल ही होता है तो नये जवाबों की तलाश क्यों हो रही है? आनन-फानन में हर वर्ष दिल्ली सरकार कड़े कदम उठा कर कई तरह के प्रतिबंध लगा देती है। इनमें निर्माण कार्य पर रोक लगाना, भवन की तोड़-फोड़ पर रोक लगाना, पुराने डीजल-पेट्रोल वाहनों पर रोक लगाना, कूड़े को जलाने पर रोक लगाना आदि शामिल हैं। निर्माण कार्यों पर रोक तो समझ में आती है परंतु जिन पुराने वाहनों पर रोक लगती है, उससे सरकार को क्या हासिल होता है, यह समझ नहीं आता।

उदाहरण के तौर पर यदि आपका वाहन दस साल पुराना नहीं है और उसमें वैध पीयूसी सर्टिफिकेट है, तो वह प्रदूषण के तय मानकों की सीमा में ही हुआ यानी आपका वाहन अनियंत्रित प्रदूषण नहीं कर रहा। इसके बावजूद अपनी गाड़ियों में नियमित 'पीयूसी' जांच करवाने वालों को प्रतिबंध के चलते वाहन सड़क पर लाने की इजाजत नहीं दी जाती। क्या यह उचित है? कोई मजबूरी में प्रतिबंधित वाहन को सड़क पर ले भी आता है, तो पुलिस वाले 20,000 रुपये का चालान वसूलने लगते हैं। ऐसे में लोग चालान न देने के लिए या तो बहाने बनाते हैं, या पुलिस वालों की जेब गरम कर देते हैं यानी प्रदूषण की समस्या के साथ-साथ भ्रष्टाचार जैसी समस्या भी जन्म ले लेती है।

ठीक उसी तरह, जब वाहन खरीदने पर उपभोक्ता रोड टैक्स देते हैं तो उन्हें सड़कों की दुरुस्त हालत क्यों नहीं मिलती? टूटी-फूटी सड़कों पर वाहन अवरोधों के साथ चलने पर मजबूर होते हैं, नतीजतन जगह-जगह ट्रैफिक जाम हो जाता है। जाम में खड़े रहकर आप न सिर्फ अपना समय, बल्कि महंगा ईंधन भी जाया करते हैं। जितनी देर जाम लगा रहेगा, आपका वाहन बंपर-टू-बंपर चलेगा और बढ़ते प्रदूषण की आग में घी का काम करेगा। ऐसे में जिन वाहनों को पुराना समझ कर प्रतिबंधित किया जाता है, उनसे ज्यादा नये वाहनों से प्रदूषण होता है। इसलिए लोक निर्माण विभाग या अन्य एजेंसियों की जिम्मेदारी होनी चाहिए कि सड़कों को दुरु स्त रखें ताकि प्रदूषण को बढ़ावा न मिले। प्रदूषण की समस्या से छुटकारा पाने के लिए इसके असल कारणों पर वार करना होगा तभी हमारा पर्यावरण स्वच्छ हो पाएगा।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:24-11-23

महाझूठ के खिलाफ

संपादकीय

डीपफेक अर्थात महाझूठ के खिलाफ अगर केंद्र सरकार कानून बनाने जा रही है, तो यह स्वागतयोग्य है। केंद्रीय मंत्री अश्विनी वैष्णव ने गुरुवार को सोशल मीडिया कंपनियों, एआई कंपनियों और अन्य शोधकर्ताओं के साथ बैठक के बाद यह स्पष्ट कर दिया है कि इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय अगले 10 दिन में डीपफेक से निपटने के लिए एक स्पष्ट, कार्रवाई योग्य योजना जारी करेगा। साथ ही, केंद्र सरकार नए कानूनी प्रावधानों का एक मसौदा भी तैयार करेगी, ताकि किसी भी तरह की गलत सूचना पर अंकुश लगाया जा सके। वास्तव में, दुनिया में महाझूठ की यह समस्या सोशल

मीडिया या इंटरनेट की दुनिया में इतनी ज्यादा हावी हो गई है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी जी-20 जैसे मंच पर चिंता का इजहार कर चुके हैं। डीपफेक की शुरुआत हास्य-विनोद के लिए हुई थी, लेकिन अब इसका उपयोग चरित्र-हनन, शोषण और दुष्प्रचार के लिए ज्यादा होने लगा है। किसी की छवि बिगाड़ने का यह चस्का इसलिए भी चलन में आ गया है कि तकनीकी तौर पर लोग सक्षम हो गए हैं। बहुत से ऐसे सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं, जिनके जरिये किसी की छवि के साथ खिलवाड़ किया जा सकता है। अत यह अब केवल ग्राफिक्स या कलात्मक कमाल मात्र नहीं है, गंभीर अपराध का भी एक रूप है।

मोटे तौर पर जो योजना सामने आ रही है, उसके अनुसार, डीपफेक पर रोक की योजना के चार स्तंभ होंगे। डीपफेक या गहरी गलत सूचना का पता लगाना, इन गहरी गलत सूचनाओं को परिदृश्य से हटाकर या घटाकर खत्म करना, इस अपराध के रिपोर्टिंग-तंत्र को मजबूत करना और जागरूकता फैलाना। यह योजना तारीफ के योग्य है और ये उपाय पहले ही कर लेने चाहिए थे। अगर वर्तमान कानूनों के दायरे में ये अपराध नहीं आ रहे हैं, तो नए कानून की तैयारी प्रशंसनीय है। जब कानून आएगा, तब आएगा, सरकार को अभी स्पष्ट कर देना चाहिए कि डीपफेक के पुराने मामलों की भी पड़ताल होगी और दोषियों को सजा मिलेगी। सरकार की इस घोषणा मात्र से महाझूठ के मामलों में कमी आएगी। दंड की कमी की वजह से ही महाझूठ फैलाने वाले गली-गली में पसरने लगे हैं। खासतौर पर सोशल मीडिया से हो रही कमाई भी इसके लिए जिम्मेदार है। डीपफेक को रोकने के लिए खासतौर पर सोशल मीडिया प्रबंधन करने वाली कंपनियों को भी जवाबदेह बनाना होगा।

डीपफेक के खिलाफ बनने वाला नया कानून, जाहिर है, अनेक स्तरों पर परामर्श से गुजरेगा। इसमें किसी भी तरह से सेंध की गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए। राजनीतिक स्तर पर भी चरित्र-हनन के लिए महाझूठ गढ़े जाते हैं, अत महाझूठ का सहारा लेने वाले राजनीतिक दलों या संगठनों या कंपनियों को जवाबदेह बनाना जरूरी है। यह अच्छी बात है कि सभी सोशल मीडिया कंपनियां इस बात से सहमत हैं कि डीपफेक की लेबलिंग और वॉटरमार्किंग जरूरी है। इसी साल की शुरुआत में तेलुगु अभिनेत्री रश्मिका मंदाना का एक फर्जी वीडियो वायरल होने के बाद से सरकार गंभीर हुई है, लेकिन इस दिशा में अधिकारियों को पूरी ईमानदारी से काम करना चाहिए। आईटी मंत्रालय ने सभी सोशल मीडिया मंचों को दो पत्र भेजकर उनकी जिम्मेदारी की याद दिलाई है। तकनीकी तरक्की और खासकर एआई के साथ मिलकर महाझूठ दुनिया के लिए दिनों-दिन खतरनाक होते चले जाएंगे। अत अगर हम समय रहते जाग जाएं, तो सबके लिए बेहतर होगा।

Date:24-11-23

भारतीय श्रमबल में बढ़ने लगी युवा और महिला भागीदारी

वी अनंत नागेश्वरन, (अर्थशास्त्री)

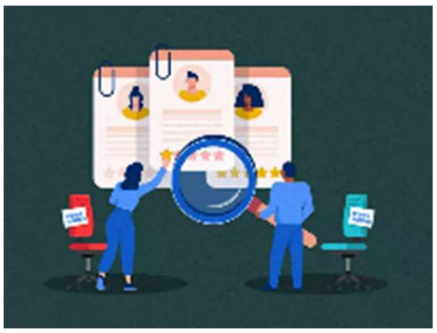

भारत के श्रम बाजार के संबंध में दो हालिया घटनाक्रम हमारा ध्यान खींचते हैं। सबसे पहले, संयुक्त राष्ट्र ने अनुमान लगाया कि दुनिया के सर्वाधिक आबादी वाले देश के रूप में भारत चीन से आगे निकल गया है, कामकाजी उम्र की आबादी में हमारी हिस्सेदारी अगले 13 वर्षों तक बढ़ेगी। दूसरा, प्रोफेसर क्लाउडिया गोल्डिन ने कार्यबल में महिला भागीदारी पर अपने काम के लिए अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार जीता। ये खबरें पिछले माह भारत के वार्षिक आवधिक श्रमबल सर्वेक्षण (पीएलएफएस) के जारी होने के साथ मेल खाती हैं। साथ ही, इससे रोजगार में मौजूदा रुझानों को समझने में भी सहूलियत होती है।

युवा रोजगार में वृद्धि हो रही है। भारत के उत्तरी व मध्यवर्ती राज्यों में युवा आबादी के साथ-साथ युवा रोजगार में भी वृद्धि हो रही है। पीएलएफएस के अनुसार, युवा (आयु 15 से 29 वर्ष) बेरोजगारी दर 2017-18 के 17.8 प्रतिशत से घटकर 2022-23 में 10 प्रतिशत हो गई है, जबकि युवाओं की श्रमबल भागीदारी दर (एलएफपीआर) 38.2 प्रतिशत से बढ़कर 44.5 हो गई है। साल 2021 में स्वास्थ्य मंत्रालय के अनुसार, उत्तर प्रदेश में 6.90 करोड़ युवा, बिहार में 3.50 करोड़ युवा और मध्य प्रदेश में 2.30 करोड़ युवा हैं। उत्तर प्रदेश की बात करें, तो यहां युवा बेरोजगारी दर साल 2017-18 के 16.7 प्रतिशत से घटकर 2022-23 में 7.0 प्रतिशत हो गई है। भारत में युवाओं की आबादी बढ़ाने वाले राज्य भी अब युवा रोजगार में वृद्धि का नेतृत्व कर रहे हैं।

महिला श्रमबल भागीदारी दर में भी वृद्धि हुई है। महिलाओं में शिक्षा बढ़ी है। उनके नामांकन में भारी वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए, उच्च माध्यमिक शिक्षा में महिला सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) को लें, जो 2004-05 में 24.5 प्रतिशत से बढ़कर 2021-22 तक 58.2 प्रतिशत हो गया है। उच्च शिक्षा में महिला नामांकन 6.7 प्रतिशत से चार गुना हो गया है। अब 27 प्रतिशत से अधिक महिलाएं उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने लगी हैं, इससे आने वाले दशकों में भारतीय कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी और बढ़ जाएगी। इससे भारत में कार्यबल की गुणवत्ता भी बढ़ेगी। ध्यान रहे, भारत में एक-चौथाई आबादी 15 वर्ष से कम उम्र की और आधी से अधिक आबादी 30 वर्ष से कम उम्र की है।

भारतीय कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है। यह 2017-18 में 23.3 प्रतिशत से बढ़कर 2022-23 में 37 प्रतिशत हो गई है। कामकाजी स्त्रियों की संख्या में वृद्धि के साथ ही स्व-रोजगार व कृषि कार्य में हिस्सेदारी में वृद्धि हुई है। सबसे पहले, स्व-रोजगार की हिस्सेदारी में वृद्धि ग्रामीण उत्पादन में स्त्रियों के बढ़ते योगदान का संकेत है। यह कई कारणों से हुआ है, जिसमें कृषि उत्पादन में निरंतर उच्च वृद्धि व स्वच्छ पेयजल, स्वच्छ ईंधन, स्वच्छता आदि जैसी बुनियादी सुविधाओं तक पहुंच के विस्तार से महिलाओं के समय व संसाधन की बचत हुई है। 'कौटिल्य इकोनॉमिक कॉन्क्लेव' में प्रस्तुत एक शोध पत्र में यह निष्कर्ष सामने आया कि हर घर नल जल से भी कार्यबल में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ी है। अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की 'स्टेट ऑफ वर्किंग इंडिया रिपोर्ट' में भी इस तथ्य को दोहराया गया है। दूसरी बात, जहां महिला कार्यबल की संरचना कृषि की ओर झुक रही है, वहीं पुरुष कार्यबल का झुकाव कृषि क्षेत्र से दूर हो रहा है। ग्रामीण महिला कार्यबल के बीच व्यवसाय के रूप में कृषि की हिस्सेदारी 2017-18 में 73.2 प्रतिशत से बढ़कर 2022-23 में 76.2 प्रतिशत हो गई है, वहीं ग्रामीण पुरुष कार्यबल में कृषि-हिस्सेदारी 55 प्रतिशत से घटकर 49.1 प्रतिशत हो गई है।

तीसरी बात, ग्रामीण महिला कार्यबल में कुशल कृषि श्रमिकों के बढ़ते अनुपात (2018-19 में 48 फीसदी से बढ़कर 2022-23 में59.4 प्रतिशत तक) और प्राथमिक कृषि श्रमिकों की हिस्सेदारी में गिरावट के चलते संरचनात्मक बदलाव हुआ है। स्त्रियों ने कृषि-कर्म छोड़ने वाले पुरुषों की भरपायी की है, यानी कृषि-कर्म का महिलाकरण कृषि क्षेत्र में संरचनात्मक बदलाव की ओर इशारा करता है। यह आपदा या संकट प्रेरित लाभ का संकेत है और यह गंभीर कला सिनेमा से ज्यादा चक दे इंडिया जैसी सुखद कहानी है।